अध्याय अष्टम

उपसंहार

वाल्मीकि एवं व्यास के अनन्तर महाकवि कालिदास का नाम सांस्कृतिक निर्माताओं में वरेण्य है। वे संस्कृत साहित्य के ही नहीं, विश्व के श्रेष्ठ कवियों में हैं। उनके साहित्य–सागर में प्रवेश करने वाले प्रत्येक विद्वान का अभिमत है कि वे मूलतः श्रृंगार एवं प्रेम के कवि हैं। अधिकांश विद्वानों ने या तो कवि की रचना प्रक्रिया, शैली, शब्द योजना, छन्द, अलंकार, भाव व्यञ्जना पर विवेचन किया है अथवा प्राकृतिक सौन्दर्य, श्रृंगार एवं प्रेम की विभिन्न स्थितियों एवं मनोदशाओं के वर्णन में कवि की श्रेष्ठता का आकलन किया है। कतिपय विद्वानों ने उनकी रचनाओं के आधार पर समसामयिक भूगोल एवं इतिहास पर भी प्रकाश डाला है। इन सब के अतिरिक्त महाकवि की दृष्टि भारतीय राजतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर भी पड़ी थी, जिसके मूल्याङ्क साहित्य का अभाव दृष्टिगोचर होता है। राजा एवं राज्य से सम्बन्धित उनकी मान्यताएं, प्रजा का सम्मान, सैन्य संगठन, युद्ध–कला, सन्धियाँ, न्याय व्यवस्था, कर विधान, राजनय राजा–प्रजा का पारस्परिक सम्बन्ध आदि सभी बातें उनकी कृतियों में मिलती हैं। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध महाकवि की उक्त दृष्टियों के समाहार का एक लघु प्रयास है।

महाकवि कालिदास वास्तविक अर्थों में वैदिक परम्परा के उपासक, महान कवि एवं कलाकार थे– कवि, विशुद्ध कवि। उन्हें जो कुछ कहना था, कला के माध्यम से कहा। बिना किसी धर्म, मत या सम्प्रदाय का नाम लिए और बिना किसी की आलोचना

किए उन्होंने विशुद्ध कवि के समान अपनी बात दृढ़ता के साथ कही और भारत का सम्पूर्ण सांस्कृतिक चित्रण या यूँ कहा जाय कि अपनी कल्पना को भारत का वास्तविक सांस्कृतिक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए उन्होंने प्रच्छन्न रूप से भी किसी पर उंगली नहीं उठाई।

प्राचीन भारत की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से सुसमृद्ध तथा प्रकाशित करने वाले महाकवि कालिदास का युग निर्धारण इतिहास की एक जटिल समस्या बनी हुई है। जब यह कहा जाता है कि इतिहास की इस विराट काया में तिथिक्रम एवं भूगोल दो आँखें हैं, तब कालिदास का युग–बोध एवं युग–निर्धारण एक महत्वपूर्ण विचारणीय पक्ष बनकर सम्मुख उपस्थित होता है। यहाँ कालिदास मात्र कवि एवं कलाकार, साहित्यकार ही नहीं, वरन् एक युग का बोध कराने वाला विलक्षण व्यक्तित्त्व है, जिसकी कालजयी कृतियों से सम्पूर्ण युग प्रकाशित होता है। कालिदास का साहित्य यदि भारतीय संस्कृत साहित्य की अमूल्य थाती है तो उनमें वर्णित या प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति भारतीय इतिहास, समाज, संस्कृति, धर्म एवं कला के स्वर्णिम अध्यायों का विवेचन एवं प्रतिबिम्बन है। कालिदास के ग्रन्थों में जिस युग के वैभव का शब्द चित्र है, वह काल्पनिक नहीं, वरन् उसमें एक सशक्त समाज का साक्षात्कार है। वस्तुतः होना यह चाहिए था कि प्रथमतः कालिदास के युग का निर्धारण होता। तत्पश्चात् उनके साहित्यिक ग्रंथों के ऐतिहासिक एवं साहित्यिक विवरणों को ऐतिह्य कालक्रम में आरोपित करके तत्युगीन समाज एवं संस्कृति का विवेचन किया जाता, किन्तु दुःखद है कि उनका युग अद्यावधि या तो अनिर्णीत है अथवा पूर्वाग्रहों के कारण ईसापूर्व एवं ईस्वी सन् के मध्य दोलायमान है।

महाकवि कालिदास का काल क्या रहा होगा, ज्ञान की अद्यतन सीमा में विमर्श का विषय बना हुआ है। यह निर्विवाद है कि वे सातवीं सदी ई० के बाद के कवि नहीं थे। विद्वानों ने कालिदास की कृतियों में प्राप्त अन्तर्साक्ष्यों के मन्थन के आधार पर उनकी सम्भाव्य तिथि ई०पू० द्वितीय शताब्दी से लेकर छठी सदी ई० के मध्य किसी समय प्रतिपादित करने का प्रयास किया है, किन्तु अद्यतन प्रतिपादित कोई भी मत अकाट्य तथा पूर्ण प्रामाणिक नहीं माना जा सका है। अस्तु, अद्यावधि कालिदास की तिथि विषयक मीमांसा नूतन साक्ष्यों के आलोक में विमर्श का विषय बना हुआ है। अभिनव पुरातात्त्विक साक्ष्यों तथा महाकवि की कृतियों में प्राप्य अन्तर्साक्ष्यों के किञ्चित साम्य के आलोक में यह प्रस्तावित किया जा सकता है कि महाकवि कालिदास ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के अन्तिम चरण में अथवा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के प्राथमिक चरण के महाकवि थे।

महाकवि कालिदास के काल के विषय में विद्वानों में चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, इस विषय पर प्रायः विद्वान सहमत हैं कि उनकी लीलाभूमि वर्तमान मध्य प्रदेश ही थी। डॉ० मिराशी उन्हें गुप्तयुगीन मानते हैं एवं वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय के दूत के रूप में उनकी स्थिति स्वीकार कर उनका सम्बन्ध रामटेक से जोड़ते हैं, जो मध्य प्रदेश की सीमा के अन्तर्गत ही था। उनके प्रकृति वर्णनों पर जिस प्रकार इस प्रदेश की छाप है तथैव उनकी कृतियों में चित्रित राज–व्यवस्था पर भी स्थानीय एवं युगीन प्रभाव है।

छोटे–छोटे जनपदों में विभक्त हो जाने के कारण कालिदास के पूर्व का भारत सैन्य–संगठन की दृष्टि से दुर्बल हो चुका था। परिणामस्वरूप विदेशी आक्रान्ता जब चाहे आक्रमण करते और जनपदीय शासकों को पराजित कर देते थे। अतः अब देश में ऐसे चक्रवर्ती सम्राट की आवश्यकता थी, जो हिमालय से लेकर समुद्रपर्यन्त देश को एक सूत्र

में बाँध सके। महाकवि कालिदास ऐसे एकतन्त्रीय और एक केन्द्रीय शासन की आवश्यकता का अनुभव करते थे, जिसमें सारा देश एक नगर के समान शासित हो सके, किन्तु इतना बड़ा देश किसी सामान्य व्यक्ति के हाथों में सौंपा नहीं जा सकता था। सौभाग्यतः उनके समक्ष न केवल ऐसे अधिकारी व्यक्ति उपस्थित थे, प्रत्युत् ऐसी राजव्यवस्था भी विद्यमान थी, जो जन–सामान्य को सन्तोष दे सके। कालिदास की कृतियों में हम इस व्यवस्था का स्पष्ट रूप देख सकते हैं। इस काल में राजा, राज्य का सर्वोपरि व्यक्ति था, जिसका जन्मना नहीं, अपितु कर्मणा क्षत्रिय होना आवश्यक था।

कालिदास मनु प्रतिपादित राजतन्त्र के समर्थक हैं। वह ऐसी प्रजा की कल्पना करते हैं, जो मनु के मार्ग पर चलती हो। धर्म एवं नीति पर लीक–लीक चलने वाले कवि के चरित्र नायक राजा, राज्य और शासन पद्धति भी क्षुण्ण मार्ग से इधर–उधर नहीं होते। मनु ने राजा के लिए जिन–जिन गुणों एवं अर्हताओं का विधान किया है, कालिदास ने उन्हें ही अपने राजाओं में सन्निहित किया है। इनके राजा 'आसमुद्र क्षितीश' थे। कालिदास राजा में बुद्धिमत्ता, वीरता तथा अन्य श्रेष्ठ मानवीय गुणों के साथ–साथ प्रजारंजन और कल्याण की भावना को अपरिहार्य मानते थे। उदार राजतन्त्र के साथ वह देश को एक छत्र के अधीन देखना चाहते थे। कालिदास का इष्ट राजा नहीं, प्रजा है। राजा उनके लिए साधनमात्र है। वह किसी सम्राट की विभव–सम्पदा से प्रभावित नहीं होते। वे राजा के बलिष्ठ शरीर एवं शस्त्राभ्यास पाटव दोनों पर बल देते हैं, क्योंकि उसी के माध्यम से क्षत्र धर्म का सम्यक् सम्पादन सम्भव है। कवि के सभी नायक विनयशील एवं मर्यादा परायण हैं। कालिदास राजा की दिनचर्या पर दृढ़ता प्रदान करते हैं, जो उनके पूर्ववर्ती आचार्यों– कौटिल्य एवं मनु ने प्रतिपादित की थी। यथापराध दण्ड महाकवि की राजनीतिक मान्यता है, उन्होंने न्याय एवं दण्ड को धर्म के रूप में स्वीकार किया है और उसका प्रतिपालन

अत्यन्त तत्परता एवं सावधानीपूर्वक करवाया है। राजपद की वंशानुगतता का समर्थन किया है। उन्होंने राजा के सप्ताङ्ग, षाड्गुण्य, शक्तित्रय एवं उपाय चतुष्ट्य आदि का नामोल्लेख ही नहीं किया है, अपितु अपने चरित्रों द्वारा कथानक की विभिन्न परिस्थितियों में इनका प्रतिपालन भी कराया है।

राज्य का भौतिक विस्तार राजतन्त्र का आकार पक्ष है तथा प्रशासन व्यवहार पक्ष। भौतिक विस्तार को देखकर राजा एवं राज्य के सामर्थ्य का अनुमान लगाया जा सकता है। राज्य विस्तार एवं उसकी सीमाएं यदि नियंत्रित नहीं रखी गयीं, तो किसी भी समय संचालन सूत्र राजा से छूट सकता है और राज्य का पतन हो सकता है। अतः सफल प्रशासक अपने राज्य का सम्पूर्ण मानचित्र सदैव अपनी दृष्टि में रखता है। मात्र अपने राज्य का ही नहीं, अपितु अपने राज्य की सीमाओं से संलग्न सम्पूर्ण राज्यों की रूप–रेखा उसके मानस पटल पर अंकित रहती है। कवि ने महाराज रघु की दिग्विजय के दौरान पराजित किसी राजा के नाम का उल्लेख नहीं किया, केवल देश एवं वंश का नामोल्लेख किया है, परन्तु जिन द्वीपों में प्रतापी रघु ने अपनी पताका फहराई, जिन नदियों को पार किया, जिन पर्वतों में डेरा डाला, जो वृक्ष दिग्विजय क्रम में मार्ग में मिले, जो फूल महके, उन सब का नामोल्लेख कवि ने किया है। स्पष्ट है कि कालिदास ने तत्कालीन राज्यों एवं राजाओं से अधिक प्राकृतिक तत्वों को प्रधानता दी है। उड़ीसा, कलिंग, पाण्ड्य, पारसीक, यवन, हूण आदि राज्यों एवं राजवंशों की भौगोलिक स्थिति मानचित्र में भी वही है, जो दिग्विजय प्रसंग में है। राज्यों के वर्णन में विरलता अवश्य है, परन्तु क्रमहीनता नहीं है। इस सन्दर्भ में कवि की दृष्टि भौगोलिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेष्ण पर न होकर राष्ट्रीय समग्रता पर केन्द्रित रहती है।

कालिदास शासनाधिकार की उपमा हाथ में सधे हुए छाते से दी है, जो छाया तो देता है, किन्तु पकड़ने वाले के हाथ को थकाता भी है। एक हाथ में दण्ड लेकर कुमार्ग पर चलने वालों का नियमन करना, लोगों के विवादों को शान्त करना, निर्बल की रक्षा करना और जब परिवार या जाति के लोग साथ छोड़ दें तो भी सहायता देकर व्यक्ति को सम्हालना, ये कार्य यदि ईमानदारी से किये जायें, तो शासन कुटुम्बियों से किसी बात में कम न हो, कालिदास इसीलिए शासन एवं बन्धु कार्य में अन्तर नहीं मानते हैं। इसलिए इस काल में राजा का स्थान मुनि के समकक्ष था। उसकी साधना एवं तपस्या किसी मुनि से कम नहीं थी। राजपद उपभोग की नहीं, तप की माँग करता था। कालिदास की कल्पना के शासक के मुख पर जहाँ एक ओर तेज, वहीं दूसरी ओर शान्ति और विश्वासोत्पादकता भी थी, क्योंकि वह ऋषियों की श्रेणी का व्यक्ति होता था।

राज्य में मन्त्रियों का अतिशय सम्मान था। वे न केवल महत्वपूर्ण विषयों में राजा को परामर्श देते थे, प्रत्युत नीति विषयक निर्णयों को छोड़कर राजा का शेष शासन उन्हीं के निर्देशन में चलता था। राजा प्रतिदिन उनके साथ मन्त्रणा करता था। कालिदास ने मन्त्री, सचिव और अमात्य शब्दों का प्रायः समानार्थ में उपयोग किया है, किन्तु प्रयोग स्थलों से संकेतित होता है कि इन तीनों के कार्यों में अन्तर था। मन्त्री राजा को गुप्त परामर्श देते और सामान्य नीति–निर्धारण में प्रमुख दायित्व निभाते थे। उनका मुख्य कार्य समवेत अथवा व्यक्तिगत रूप में राजा को वर्तमान से अवगत कराना और भावी के लिए निर्णय देने में सहायता देना था। निर्णय प्रायशः मन्त्रिगण ही लेते थे, किन्तु उन पर राजा की स्वीकृति अनिवार्य थी। राजा उनके निर्णयों को पलट भी सकता था। सचिवों का पद सम्भवतः मन्त्रियों से कुछ नीचे था। वे सामान्य दैनन्दिन कार्यों में राजा को परामर्श देते

रहते थे। कालिदास ने पत्नी को भी सचिव कहा है, जो पति को याचित–अयाचित परामर्श देती है। अमात्यों का काम निर्णयों एवं नीतियों को कार्यान्वित करना था।

मन्त्री प्रायः आनुवंशिक होते थे। पिता की मृत्युपरान्त, पुत्र भी, यदि वह अयोग्य न हुआ तो मन्त्री बना दिया जाता था। ऐसे वंशानुगत मन्त्री तथा अन्य अधिकारी मौल कहलाते थे। ये अपेक्षाकृत अधिक विश्वस्त होते थे। मौलों में भी स्थविरों (आयुर्वृद्धों) का अधिक सम्मान होता था। प्रधानामात्य सामान्यतः ब्राह्मण होता था। इस प्रकार बौद्धिक और आत्मिक शक्ति अधिकार एवं सत्ता को संयत रखती थी। यों भी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की एक बड़ी विशेषता रही है कि उसमें विधायिका और कार्यपालिका एक ही स्थान पर केन्द्रित नहीं थी। विधि अथवा कानूनों का निर्माण करते थे निस्पृह, गृहत्यागी तापस और उनका पालन कराने वाला था– प्रशासन। अमात्य हर प्रकारसे राजा के प्रति ईमानदार थे। राजा राज्य का समस्त प्रभार मन्त्रियों पर डालकर कभी–कभी विशिष्ट कार्य में सन्नद्ध हो जाता था, तो भी राजकार्य यथावत् चलते रहते थे। इस प्रकार निस्पृह विद्वानों का सत्परामर्श और शासक का भुजबल दोनों मिलकर शासन को स्थायित्व प्रदान करते थे।

राजा राज्य का सर्वोच्च न्यायाधिकारी होता था। वह यह कार्य स्वयं देखता एवं शास्त्र के अनुसार प्रजा के विवादों पर निर्णय देता था। जनता की बेरोक–टोक पहुँच राजा तक होती थी। वह अर्थी एवं प्रत्यर्थी के विवादों को स्वयं सावधानीपूर्वक देखता था और इस प्रकार निर्णय देता था कि दोनों का संशय दूर हो जाय। परिणामस्वरूप जनता पूरी आयु तक जीवित रहती थी आतंक एवं ईति से रहित होकर। राजा जिस आसन पर बैठकर अभियोगों पर विचार करता था, उसे धर्मासन और जनता की प्रार्थनाएं सुनकर उन

पर विचार करने के स्थान को धर्मसभा कहते थे। अभियोगों की जाँच कर तथ्यों को राजा के सम्मुख, प्रस्तुत करने के लिए पृथक् अमात्य होते थे और मार्गदर्शन हेतु धर्माध्यक्ष होता था। इसका पद विधि मन्त्री जैसा था। यथापराध दण्ड का ध्यान रखा जाता था। दण्ड्य को दण्डित करना धार्मिक कर्तव्य था। इस विषय में उदारता का प्रदर्शन अव्यवस्था को आमन्त्रित करता था। दण्ड की उचित व्यवस्था होने के कारण इस युग में बड़े–बड़े अपराधों का उल्लेख नहीं मिलता, केवल पाटच्चर, कुम्भीरक, गण्डभेदक जैसे शब्द जो चोर के पर्याय हैं, इस युग में मिलते हैं। इन सामान्य अपराधों के लिए भी इस युग में कड़े दण्ड का विधान था। जीवित अपराधी को गिद्धों के समक्ष नोचने–खाने के लिए छोड़ देना अथवा मारकर उसे इनका आहार बना देना तथा शिकारी कुत्तों के समक्ष खाने के लिए छोड़ देने जैसे क्रूर दण्ड भी प्रचलित थे। धर्मासन द्वारा दिये जाने वाले दण्ड के अतिरिक्त राजमहिषी को अन्तःपुर के किसी भी व्यक्ति को दण्डित करने का अधिकार था। अपराधी हाथ–पाँव बाँधकर अन्धी कोठरी में डाल दिए जाते थे। यह बन्दीगृह (पाताल काल कोठरी) सारभाण्ड कहलाता था और अन्धकारमय भूगर्भ स्थान होता था।

महाकवि कालिदास ने छः प्रकार के बलों को मान्यता प्रदान की है। दिग्विजय प्रसंगों में उन्होंने अपने चरित्रों को षडानन की भांति छः प्रकार के बलों से युक्त वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक प्रसंगों में चतुरंगिणी सेना के उल्लेख किए हैं। जलपोतों के बेड़ों का भी उल्लेख किया गया है। कालिदास की कृतियों में सैन्यबल का उपयोग राज्य विस्तार एवं शक्ति प्रदर्शन दोनों स्थितियों में होते हुए दिखाये गये हैं। सेना को यथेष्ट महत्व देते हुए भी कालिदास ने इसका उपयोग तभी न्यायसंगत बताया है, जब राजनीति के किसी अन्य उपाय द्वारा दुष्ट दमन असम्भव हो जाय। युद्ध नीति के अनुसार, पैदल पैदल से, रथी रथी से, अश्वारोही अश्वारोही से और गजारोही गजारोही से युद्ध

करते थे। सोये हुए अथवा असावधान शस्त्र रहित योद्धा का वध नहीं किया जाता था। कर्मचारियों और शत्रुओं का भेद जानने के लिए सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था थी। गुप्तचर भी एक–दूसरे को नहीं पहचानते थे। गुप्तचर विभाग इतना सुगठित था कि शासक एक स्थान पर बैठकर भी सब कुछ देखता था। इसी कारण राजा लोग चारचक्षुष कहलाते थे। गुप्तचर 'अपसर्प' कहलाते थे। इनके कारण ही दुर्ग दुर्ग्रह रह पाते थे। जो कार्य करने होते थे, उनका सामान्यतः तब पता चल पाता था, जब वे पूर्ण हो जाते थे। तुष के भीतर जैसे चुपचाप धान पकता रहता है, ऐसे ही उनकी प्रगति होती रहती थी, पहले से ढिंढोरा नहीं पीट दिया जाता था।

कालिदास ने अपने चरित्रों के माध्यम से षाड्गुण्य– सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय एवं द्वैधीभाव के नामोल्लेख के साथ–साथ प्रतिपालन भी कराया है। कवि ने इन नीतियों को छह मुख की उपमा दी है। ये छहगुण राज्य की बाह्य नीति से सम्बन्धित होते हैं। अपने राज्य की सीमाओं से संलग्न पड़ोसी राज्यों तथा अन्य शत्रु–मित्र अथवा उदासीन राजाओं से युद्ध एवं शान्ति की परिस्थितियों में राजा किस प्रकार का व्यवहार करे, इसी निर्णय के विवेक को परिपुष्ट करने हेतु इन गुणों का ज्ञान अत्यावश्यक है। कालिदास ने अपनी कृतियों में षाड्गुण्य की सभी स्थितियों का चित्रण किया है। यह अवश्य है कि उन्होंने सन्धि एवं विग्रह के अधिक रूप प्रदर्शित किए हैं। यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो षाड्गुण्य में सन्धि एवं विग्रह ही दो मुख्य स्थितियाँ हैं। राजा अपने को सफल बनाने के लिए परिस्थिति के अनुसार छः गुणों का आश्रय लेता है।

राजतन्त्र के इतिहास में ऐसी आदर्शमय परिस्थितियाँ बहुत कम हैं, जब एक राज्य की सीमाओं से लगे पड़ोसी राज्यों के साथ एक सा व्यवहार हो। कोई शत्रु राज्य

होगा, कोई मित्र और कोई उदासीन। किसी के साथ सन्धि की स्थितियां होंगी, तो किसी के साथ विग्रह की। अतः परिस्थिति, स्थान और समय के अनुरूप राजा को आसन, यान, संश्रय एवं द्वैधी की भाव गुणों का आश्रय लेना अनिवार्य होगा, तभी उनका राज्य सुरक्षित एवं संवर्द्धित होगा।

कालिदास ने अपनी कृतियों में 'तिसृभिः ..... शक्तिभिः' 'शक्तित्रय' आदि शब्दों का प्रयोग करके शक्तित्रय के सिद्धान्त के महत्व को राजतन्त्र में स्वीकार किया है तथा अपने चरित्रों में कहीं तो इन तीनों शक्तियों का समन्वय दिखाकर 'समशक्त' विचार को चरितार्थ किया है और कहीं देश, काल और परिस्थिति के अनुसार इन तीनों शक्तियों में से किसी एक का प्रयोग प्रदर्शित किया है। इसी प्रकार कालिदास ने उपाय चतुष्ट्य को राजतन्त्र का आभूषण कहा है। देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार उपाय चतुष्ट्य– साम– दाम, दण्ड, भेद का समुचित उपयोग करके राजा अपना शासन सुखपूर्वक चला सकता है।

कालिदास ने अपनी कृतियों में कोष सञ्चय एवं उसके सदुपयोग सम्बन्धी अनेक उदाहरण दिए हैं, जिनके विवेचन से स्पष्ट है कि उन्होंने राजकोष सम्बन्धी मान्यताओं में प्राचीन राजशास्त्र के आचार्यों का ही अनुसरण किया है। वे करों का औचित्य तभी स्वीकार करते हैं, जब राजा अपने प्रजारक्षण के कार्यों का विधिवत् पालन करता हो। राजा के समर्थ संरक्षण में जब प्रजा सन्तुष्ट एवं परिपुष्ट होती है, तब वह प्रसन्नतापूर्वक राजा को कर देती है। कालिदास ने राजा को षष्ठांश वृत्ति कहा है। वह उपज का छठा भाग कर के रूप में पाता था, किन्तु कर से प्राप्त धन जिसे बलि कहा जाता था, प्रजा के ही कल्याण में लगा देता था। एक स्थान पर उन्होंने इसे राजा का वेतन कहा है, जिसके

बदले में वह प्रजा के प्राणों और सम्पत्ति की रक्षा करता था। तपोवनों की रक्षा के लिए उसे तप के षष्ठ भाग की प्राप्ति होती थी। आज के अन्य साधनों में वाणिज्य तथा शिल्पादि धन्धे भी थे। विभिन्न मदों से प्राप्त आय को सुव्यवस्थित करने वाले कर्मचारी होते थे, जो आय के साथ साथ व्यय का हिसाब किताब रखते थे।

आन्तरिक एवं बाह्य विपत्तियों से मुक्त रहने के कारण राज्य में व्यापार एवं वाणिज्य काफी समृद्ध था। कालिदास ने शिल्पियों के संघ का उल्लेख किया है, जिन्होंने राजा कुश के आदेश पर उजाड़ अयोध्या नगरी को पुनः नया रूप प्रदान किया था। प्रमुख नगरों में राज–मार्गों के दोनों ओर दुकानें होती थी। आपण–मार्गों में स्थित शराबखानों तथा जौहरियों की दुकानों के उल्लेख मिलते हैं। बाजारों में खरीद–फरोख्त की सरगर्मी रहती थी। केसर के उत्पादन क्षेत्र कश्मीर सिन्धु नदी के तटीय भूभाग, वाह्लीक (बल्ख), उद्यान (उड़ीयान–अफगानिस्तान) एवं दरेल थे। हाथी अंग (बिहार के भागलपुर एवं मुंगेर) कामरूप (असम) तथा कलिंग में बहुतायत पाए जाते थे। रघुवंश में ताम्रपर्णी नदी तथा हिन्द महासागर को मूंगों का विशाल स्रोत कहा गया है। गुप्तयुगीन राजनैतिक स्थिरता के वातावरण में कानून व्यवस्था की स्थिति सन्तोषजनक होने के कारण अपराधों में कमी आ गई थी। परिणामस्वरूप व्यापारिक मार्ग भी अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित हो गए थे। सार्थ के सदस्य पहाड़ी रास्तों की यात्रा करते समय अपने को उसी प्रकार सुरक्षित महसूस करते थे, जैसे वे अपने घरों में ही हों। वे नदियों को कुंएं एवं वनों को उपवन समझते हुए निर्भय होकर आसानी से पार कर लेते थे। व्यापार स्थल एवं जल–मार्गों द्वारा होता था। कालिदास ने बंगाल के नाविकों को जलीय यात्रा में सिद्धहस्त बताया है। समुद्री यात्रा के अनेक खतरे भी थे। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में हस्तिनापुर के एक व्यापारी की मृत्यु पोत भंग के कारण हुई, बताया गया है।

इस प्रकार महाकवि कालिदास प्रणीत कृतियों के अनुशीलन से उनके चरित्र नायकों की राज–व्यवस्था के संकेतक तथ्यों से स्पष्ट है कि तत्युगीन राजव्यवस्था प्रजा तन्त्रात्मक एक तन्त्र था, जिसमें सम्पूर्ण प्रजा की समस्त अनुभूतियाँ एवं आकांक्षाएं समाहित थीं। कर्त्तव्यनिष्ठा, उत्तरदायित्व का निर्वाह, व्यवस्था की अधीनता, परिश्रम पौरुष, निर्भीकता एवं स्वार्थ त्याग सभी राजाओं में विद्यमान होने के कारण प्रजा को अपनी सन्तान के रूप में देखते थे। राजा का आदर्श ही प्रजा का आदर्श बनता है। अतः राजाओं का वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन, जो प्रजातान्त्रिक गुणों से विभूषित था, प्रजा के जीवन को प्रभावित करने में समर्थ हुआ और इस प्रकार राजा–प्रजा के समुचित सहयोग से सर्वगुण सम्पन्न राज व्यवस्था का विकास हुआ।